शब्दों में छिपा उत्पीड़न

शारदा कुमारी*

शिक्षा को प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार घोषित किये हुए चार वर्ष बीत चुके हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा विद्यार्थियों की पिटाई व किसी भी प्रकार के शारीरिक उत्पीड़न पर प्रतिबंध लगाकर बच्चों के प्रति हिंसा को रोककर सराहनीय कदम उठाया गया है। किंतु आज भी विद्यालयों में भाषायी व्यवहार व अश्लील शब्दों द्वारा की जाने वाली हिंसा विद्यमान है। इस प्रकार की हिंसा का शिकार विशेष रूप से बालिकाओं को बनाया जाता है, जिसमें पुरुष अध्यापक ही नहीं महिला अध्यापक भी शामिल होती हैं। यह हिंसा जाति, वर्ग, शारीरिक बनावट, रंग-रूप आदि को लेकर की जाती है। किंतु क्या हमने कभी यह सोचा है कि इस प्रकार की हिंसा बालक व बालिकाओं की मानसिकता व उनकी संवेदना पर कितना बुरा प्रभाव डाल सकती है? इस लेख का उद्देश्य यही बताना है कि भाषायी हिंसा को रोकने के लिए क्या हमें किसी तरह के न्यायालयी हस्तक्षेप का इंतज़ार करना चाहिए? अथवा हमें स्वयं ही सचेत होकर अपने शब्दों की जाँच करनी चाहिए कि कहीं हमारे शब्द किसी विद्यार्थी के उत्पीड़न का कारण तो नहीं बन रहे?

अरुणिमा, बारह वर्ष की चंचल, शोख, चुलबुली-सी लड़की, भारतीय सामाजिक मान्यताओं के अनुसार बहुत ही खूबसूरत भी। वह देश की राजधानी के संभ्रांत कहे जाने वाले परिवार की लड़की है और ज़ाहिर सी बात है कि किसी बहुत अच्छे निज़ी विद्यालय में पढ़ने जाती है। पिछले आठ दिन से वह विद्यालय नहीं जा रही। अभिभावकों के कुछ भी पूछने-कहने पर बस एक ही बात कहती है "कह दिया न मैंने, नहीं जाना स्कूल। नहीं है मेरा मन।" विद्यालयी पाठ्यचर्या से जुड़े हर काम में अव्वल रहने वाली कुशाग्र बुद्धि (अरुणिमा के विद्यालय न जाने के कारणों पर चर्चा चल रही है। भारत के लगभग हर प्रदेश के सरकारी, गैर-सरकारी विद्यालयों के अध्यापक इस चर्चा में भाग ले रहे हैं। उनकी अटकलें कुछ इस प्रकार हैं–

* *वरिष्ठ प्रवक्ता,* मंडल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर.के. पुरम्, सेक्टर-7, नयी दिल्ली 22

Chapter 7.indd 67 6/26/2015 2:50:40 PM

- शायद उसकी अपनी किसी ख़ास सहपाठी से अनबन हो गई हो।
- उसके किसी विषय – विशेष में कम अंक आए हों और पहली बार ऐसा होने पर वह अपनी हार स्वीकार न कर पा रही हो।
- हो सकता है कि उसका कोई सहपाठी उससे रूठ गया हो, जिसकी वजह से वह अनमनी हो।
- किसी स्पर्धा आदि में पीछे रह गई हो और अब हार पचा पाना मुश्किल लग रहा हो।
- उससे भी कहीं अधिक आकर्षक लड़की ने प्रवेश ले लिया हो और अब वह स्वयं को थोड़ा अस्वीकार्य-सा समझ रही हो।
- मासिक धर्म की शुरुआत हो गई हो और वह असहज सी महसूस कर रही हो।
- किसी छोटी-बड़ी लापरवाही के लिए अध्यापकों ने डाँट दिया हो और चूँकि पहले कभी डाँट नहीं खाई इसलिए इस पहली डाँट को स्वीकार करना मुश्किल लग रहा हो।
- किसी कार्यक्रम विशेष में भाग लेना चाहती हो पर अध्यापक द्वारा वह अवसर किसी और को दे दिया गया हो।
- मुँह पर दाने/मुँहासे निकलने की शुरुआत हो गई हो और 'भद्दी न दिखूं' इस वजह से विद्यालय न जा रही हो।
- किसी विषय का कोई नया प्रकरण शुरु हुआ हो वह समझ न आ रहा हो। चूँकि कुशाग्र बुद्धि व अव्वल रहने का तमगा उसके साथ चल रहा है, अत: अब संकोच वश ज़ाहिर न कर पा रही हो कि उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है।
- किशोरावस्था की शुरुआत है ऐसे में मन भटकना स्वाभाविक है। हो सकता है कि पढ़ाई-लिखाई से ध्यान उचट गया हो और फ़ैशन की तरफ़ रुझान बढ़ रहा हो।

अटकलों के इस दौर को बढ़ाया जा सकता था यानी कि 'अरुणिमा ने अचानक विद्यालय जाना क्यों छोड़ दिया' इसके संभावित कारणों को जानने के लिए हो रही चर्चा को जारी रखा जा सकता था पर हरेक बात के लिए एक समय सीमा है। अत: इस चर्चा को रोककर उनके सामने एक और उदाहरण प्रस्तुत किया गया।

अब अरुणिमा का स्थान महुआ ने ले लिया है। 'आयु' की समानता के साथ-साथ एक-आध और विशेषताओं को छोड़कर ढेरों अंतर हैं दोनों में जैसे- महुआ है, तो चंचल, शोख चुलबुली बारह वर्षीया लड़की पर वह अरुणिमा की तरह न तो धनाढ्य है और न ही किसी अभिजात्य वर्ग वाले मौहल्ले, कॉलोनी में रहती है। संक्षेप में उसका परिचय कुछ यह है कि भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुसार वह साधारण से नाक-नक्शे वाली साधारण-सी लड़की है। विद्यालय में किसी भी प्रकार की कुशाग्रता का परिचय नहीं दे पाई, पर माता-पिता का दिहाड़ी का काम व तीन छोटे बहन-भाइयों का पालन-पोषण उसकी कुशाग्रता के भरोसे ही चल रहा है। विद्यालयी पाठ्यचर्या से जुड़ी सभी गतिविधियों में भाग लेती रहती हैं पर कई बार परिस्थितिवश नहीं भी ले पाती। उपलब्धियों के संबंध में अव्वल तो नहीं रही पर औसत से नीचे भी कभी नहीं गई वह। महुआ भी पिछले कई दिन से विद्यालय नहीं जा रही है। अरुणिमा

की तरह उसका भी यही कहना है कि "मन नहीं कर रहा मेरा"।

अब देश की राजधानी से लेकर दूर-दराज़ के शहर-देहातों के अनुभवी अध्यापक चर्चा कर रहे हैं कि महुआ के विद्यालय न जाने के क्या-क्या कारण हो सकते हैं-

- घर के किसी सदस्य की अस्वस्थता।
- माता-पिता द्वारा पढ़ाई छोड़कर किसी आय उत्पादन संबंधी काम में जुड़ने के लिए बाध्य होना।
- अध्यापक द्वारा गृहकार्य न करके लाने या किसी और प्रकार की लापरवाही के लिए डाँटना-डपटना; हालाँकि इस प्रतिक्रिया पर एक और प्रतिक्रिया जोड़ी गई कि इस सामाजिक पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए डाँटना-डपटना कोई विशेष मायने नहीं रखता क्योंकि वे इस तरह की बातों के आदी होते हैं।
- घर में किसी नए सदस्य भाई-बहिन/मेहमान का आगमन जिससे काम का भार बढ़ गया हो।
- किसी विषय-विशेष के लिए अध्यापक द्वारा कोई खास सामग्री मंगवाई गई हो और निर्धनता उस सामग्री को जुटाने में आड़े आ रही हो।
- स्कूल आते-जाते उसे कोई छेड़ता हो।
- महुआ का स्वास्थ्य ठीक न हो। रक्त अल्पता, कमज़ोरी आदि कोई भी स्थिति हो सकती है।
- किसी खास परियोजना विशेष में भाग लेने के लिए कहा जा रहा हो और महुआ उसमें भाग नहीं लेना चाहती हो। इस प्रतिक्रिया पर भी एक टिप्पणी जोड़ी गई कि महुआ जैसे बच्चे अपनी रुचि/अरुचि का खयाल नहीं करते। वे हर स्थिति को अपनी नियति मानकर चलते हैं।
- किसी सहपाठी से अनबन; इस प्रतिक्रिया पर भी कहा गया कि महुआ जैसे बच्चे अपनी सामाजिक-पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण संवेगात्मक रूप से बहुत मज़बूत होते हैं। साथियों की अनबन उनके लिए कोई मायने नहीं रखती।

गरीब परिवार की बेबसी-लाचारी से जुड़ी अटकलों का दौर कुछ अधिक लंबा नहीं चला। अब सभी प्रतिभागी बेसब्र से हो चले थे और जानना चाह रहे थे कि आखिर अरुणिमा और महुआ ने विद्यालय जाना क्यों बंद कर दिया? दोनों किशोरियों की स्कूली जीवन के प्रति अरुचि पैदा होने का एक ही कारण था **'अध्यापकों का भाषायी व्यवहार।'** विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में आयोजित बहुत बड़े स्तर की गोष्ठियों/प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अध्यापकों का भाषायी व्यवहार क्या कभी कोई मुद्दा बनकर उभरा है? कितने शोध इस क्षेत्र में हुए हैं कि अध्यापकों के बात करने के तौर-तरीके, उनकी शब्दावली विद्यार्थियों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है?

औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हर अध्यापक के लिए बहुत-सी अहर्ताओं/योग्यताओं की एक सूची बनती है जिसमें ज़िक्र होता है कि उनमें अपने विषय की गहरी समझ हो, पठन-पाठन के नये तरीकों की जानकारी हो, बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान हो, शिक्षण सामग्री का निर्माण करना आता हो पर उनका भाषायी व्यवहार कैसा हो इस पर न कोई प्रशिक्षण कार्यक्रम रोशनी डालता है और न ही हम अध्यापक इसके प्रति सचेत रहते हैं।

अरुणिमा को आए दिन अपनी अध्यापिका से सुनना पड़ता है कि–

"ये लड़कों की तरह लंबे-लंबे डग क्यों भरती हो? लड़कियों की तरह थोड़ा आराम से चला करो"

"इतना खिलन्दड़पन मत दिखाया करो। यह सब लड़कों को शोभा देता है। छुटपन में तो ठीक था अब तुम बड़ी हो रही हो। कुछ गंभीरता लाओ व्यवहार में।"

"थोड़ा साज-सिंगार कम किया करो। एक तो भगवान ने ही रंग-रूप इतना दे दिया, ऊपर से तुम्हारा ये साज-सिंगार, अभी उमर नहीं है तुम्हारी इन सब पचड़ों में पड़ने की।"

ये सब बातें तो रोज की ही थी पर एक दिन तो सीमा ही लांघ दी एक अध्यापक ने, "अरे अरु! तुम्हें क्या ज़रूरत इतनी मेहनत करने की? तुम तो बस सामने आ जाया करो, जी खुश हो जाता है।" अध्यापक की निर्लज्जता उसकी भाषा में कुछ इस तरह से फूटी, "इस पर तो अभी बचपन में ही जवानी फूट पड़ी है..." आगे जो बोला गया वह दंश अरुणिमा सुन भी कैसे गई यह अपने आप में एक सवाल है।

एक दिन अरुणिमा ने चहकते हुए अपनी कक्षा अध्यापिका को बताया कि "स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा वाले सर ने सिर्फ उसे ही 'ए प्लस' दिया है समूची कक्षा में।" इस पर कक्षा अध्यापिका का अपनी एक आँख कोने से दबाते हुए यह कहना "जानती हूँ तुम्हे किस बात के अंक दिये हैं उस रसिया ने" एक तरफ़ अरुणिमा को तो प्रताड़ित कर ही गया तो दूसरी तरफ़ अध्यापकों के पेशे को भी शर्मसार कर गया। अब यह सवाल तो नहीं उठाएँ कि बारह साल की बच्ची इस तरह की बातों का मर्म क्या समझेगी? प्रचार-प्रसार के माध्यमों ने, फ़िल्मों ने, कार्टून सीरियलों ने सब कुछ सिखा दिया है। जिस 'रसिया ' अध्यापक के बारे में कक्षा अध्यापिका ने कहा था, उन्हीं से जुड़ा एक प्रसंग और भी अरुणिमा की स्मृतियों में कड़वाहट के साथ बिंधा हुआ है। मध्यावकाश के दौरान अरुणिमा विद्यालय के बरामदे की सीढ़ियों पर अपने सहपाठी के साथ बैठी थी। वे उस समय एक पुस्तक पढ़ रहे थे। उस तरफ़ से गुज़रते हुए अध्यापक का संबोधन सहपाठी के लिए था, "कितने मज़े लूटेगा? कुछ हमारे लिए भी छोड़। सारा तू अकेले अकेले ही चखेगा?"

इस वहशीपन से भरी भाषा को सुनकर लिज़लिज़ेपन का अहसास होता है दोनों सहपाठियों को। शब्दों का अर्थ वे समझे या नहीं पर इतना ज़रूर जान जाते हैं कि कोई भद्दी सी बात कही गई है।

अध्यापकों की क्या कहें, एक बार विज्ञान प्रयोगशाला सहायक बोल पड़े, "ए अड्डू-अड्डू नाम भी कैसा रखा है। ये लौंडों की तरह क्या बकर-झकर करती फिरती है, थोड़ा सयानापन दिखा।"

अब आप बताएँ अरुणिमा घर बैठे या न बैठे?

महुआ की कहानी भी कुछ अलग नहीं, वह भी भाषायी तीरों का शिकार है। किसी दिन विद्यालय पहुँचने में देर हो जाए तो सुनेगी, "क्यों मां ने किसी धंधे में डाल दिया क्या? मां से कहना धंधा और स्कूल साथ-साथ नहीं चलते।" एक दिन महुआ छुट्टी के बाद अपनी तीन सहपाठिनों के साथ मनिहारिन के पास चली गई, तीज के दिन थे। घर पहुँचने में देर हुई।

अभिभावक ने विद्यालय में दरियाफ़्त की। स्कूल से तो समय पर ही निकल गई। अभिभावकों ने जो कहा सो कहा अगले दिन प्रात:कालीन सभी विद्यार्थियों के सामने कड़ी फ़टकार लगाई गई, "ये लड़कागिरी नहीं चलेगी। घर से सीधे स्कूल और स्कूल से सीधे घर। लड़कों की तरह डोलने की ज़रूरत नहीं इधर-उधर। एक तरफ़ गरीबी का रोना रोते हो तब स्कूल किसी काम से कुछ चीज मंगा ले और दूसरी तरफ़ चूड़ियाँ खरीदी जाती हैं।"

इस भाषण के साथ-साथ महुआ के आँसू टप-टप गिरते रहे और अँगूठे का पैर मिट्टी कुरेदता रहा।

नसीहतों का अंत यहीं नहीं हुआ सभा के बाद कक्षा में जो भी अध्यापिका आती, पहले महुआ को ही संबोधित करती, "लगती तो सीधी-सादी हो और हरकत ऐसी।" एक ने तो यह तक कह दिया, "तेरी स्याह बांहों में चूड़ियाँ लगेंगी कैसी? ये तो सोच लेती।"

कक्षा में काम अच्छा न कर पाने पर उसे कहा जाता, "एक तो गरीब, ऊपर से कलुई। कैसे पार लगेगी तेरी नैया, ढंग से पढ़ ले यही कुछ काम आएगा तेरे।"

किसी दिन महुआ के केश विन्यास में थोड़ा-सा अंतर दिखता अन्य दिनों की अपेक्षा या फिर आँखों में काजल की डोरी-सी डाल लेती तो कक्षाध्यापिका फ़ौरन टोकती, "बेटे, तुम झुग्गियों वालों को समझाना तो बेकार है, फिर भी चेता रही हूँ कि अभी से कदम फ़ैशन की दुनिया में मत बढ़ाओ। कोई अड़ोसी-पड़ोसी से नेह लग भी गया हो तो झटका देकर तोड़ डालो। इन सब कामों के लिए बहुत लंबी उमर है।" बेबुनियादी आरोपों भरी नसीहतें सुनकर महुआ की आँखें छलछला उठतीं तो उंगली साधते हुए निर्देश दिया जाता, "रोना नहीं। एकदम रोना नहीं। हम तो तुम्हें कीचड़ से निकालने की कोशिश कर रहे हैं और तुम! शुक्र मनाओ बच्चों, कि कोई टोकने वाला मौजूद है तुम्हें।" ऐसा कहकर अभिव्यक्ति के सभी रास्तों पर ताला जड़ दिया जाता। "छोटी-सी उम्र में कितनी तेज़ जुबान चलती है तुम्हारी।" कहकर बोलने की आज़ादी तो छीन ही ली गई थी अब रोकर अभिव्यक्ति करने पर भी पाबंदी लग गई।

वार्षिक उत्सव का आयोजन किसी भी विद्यालय में प्राणों का संचार करने वाला होता है। हालाँकि अध्यापकों का काम बढ़ जाता है इस तरह के आयोजनों से विद्यार्थी बहुत खुश रहते हैं क्योंकि उबाऊ कक्षाओं की जगह अब वे नृत्य, नाटक गीत आदि की तैयारी में जुट जाते हैं। कहीं झंडियाँ बना रहे होते हैं, तो कहीं साज-सज्जा के कुछ और काम। सभी बच्चे खुश रहते हैं कि कुछ दिन तो पढ़ाई से छुट्टी मिली। इस बार के वार्षिकोत्सव के लिए मुख्य अतिथि की अगवानी का उत्तरदायित्व महुआ की कक्षाध्यापिका पर था। उन्हें अपनी कक्षा से दो लड़कियों को चुनना था, जो मुख्य अतिथि को हार/पुष्पगुच्छ आदि भेंट कर उनका स्वागत कर सकें। इस संदर्भ में उन्होंने कक्षा में घोषणा की। महुआ चहकी, अपने भीतर सिमटे हर्षोल्लास को आवाज़ में उड़ेलते हुए बोली, "मैम मुझे, प्लीज़ मैम मुझे मेरे को बहुत अच्छा लगता है ऐसा करना।" मैम का निचला ओंठ कुछ टेड़ा हुआ फिर दाँत भींचते हुए शब्दों के पत्थर बरसाए, "अरे पहले अपना रंग-रूप तो देख

कौवे जैसा स्याह रंग और उस पर सफ़ेद बिल्ली सी आँख।" महुआ तो बच्ची है, उसके स्थान पर कोई परिपक्व इंसान भी होता तो उसका आत्मविश्वास भी डगमगा जाता यह सब सुनकर। हम सभी जानते हैं कि अध्यापकों द्वारा कही गईं बातें बच्चों के मन में गहरे से पैठ जाती हैं। फिर हम क्यों नहीं गौर करते अपने भाषायी व्यवहार पर। कोई छोटी-सी भी बात कह देता है, तो कितनी ठेस पहुँचती है दिल को। मुट्ठियाँ भिंचने लगती हैं, चेहरा तमतमा उठता है। ज़रा सोचिए महुआ और अरुणिमा पर क्या गुज़रती होगी, जब उन्हें शब्दों से बींधा जाता है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विद्यार्थियों की पिटाई व किसी भी तरह के शारीरिक उत्पीड़न पर प्रतिबंध लगाकर बच्चों के प्रति हिंसा को रोकने का सराहनीय कदम उठाया गया है। क्या हमें अपने भाषायी व्यवहार से विद्यार्थियों के प्रति की जा रही हिंसा को रोकने के लिए भी किसी तरह के आदेश या न्यायालय के हस्तक्षेप का इंतज़ार करना चाहिए? या फिर हम स्वत: सचेत हो जाएँ और जाँच करें अपने शब्दों की, कहीं वे उत्पीड़न का कारण तो नहीं बन रहे?